(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-27 | अप्रैल-2017 | अंक-4

नाव

नाव (संसार), एक साधन है।
भवसागर के उस पार लगने का।
अस्तित्व को जानने का।
नाव ने भवसागर पार लगा दिया।
मुक्ति द्वार तक पहुंचा दिया।
अब तो नाव से नीचे उतरो।
'भव सागर पार' का आनन्द लो।
अस्तित्व को पहचान लो।
ठीक है, नाव में खान पान, रहन सहन इत्यादि,
सभी उपलब्धियां उपस्थित हैं।
परन्तु इन्हीं उपलब्धियों में लिप्त मत होओ।
नाव ने अपना कार्य कर दिया।
आप को उस पार लगा दिया।
अब तो नाव से नीचे उतरना ही होगा।
अस्तित्व का आनन्द उठाना ही होगा।

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

मानव जीवन; अनमोल

- श्रीमती गुंजन गोयल (मो० 098962-69674)

हमारा जीवन परमात्मा का दिया हुआ एक उच्चतम उपहार है।

अपने जन्मदिवस पर हम खुशियां मनाते हैं, केक काटते हैं।

क्या हमने अपने जन्मदिन पर उस परमपिता का कभी धन्यवाद किया?

क्या कभी सोचा कि हमारे जीवन में, जो एक और नया सवेरा जुड़ा है - आखिर उसका मकसद क्या है? जन्म लेते ही हम अपने परमपिता से दूर होने लगते हैं। हम अपनी जिंदगी को कैलेंडर की तारीखों के समान जीते चले जाते हैं - कभी खुलकर तो जिए ही नहीं। मालिक को तो हमने याद किया ही नहीं।

जिंदगी तो मात्र एक सफर है।

जिसको आनंद लेते हुए जीते चले जाना है।

उतार चढ़ाव से डरना कैसा? घबराना कैसा?

जरूरत है तो बस गियर बदलते रहने की ।

जीवन के सफर में जितना कम सामान हमारे साथ होगा - उतना ही सुखपूर्ण सफर रहेगा। व्यर्थ का सामान ढोने से मुश्किलें बढ़ती चली जाएंगी। अगर जिंदगी का आनंद पूर्ण रूप से और भरपूर लेना है- तो दिल में अरमानों को कम करके, परमात्मा का स्थान बनाए रखें। अत्याधिक सामान और व्यर्थ के अरमानों को दिल में रखकर ही; शायद हम अपनी जिन्दगी में नीरसता बढ़ाते चले जाते हैं?

जरूरत है तो सिर्फ जीवन के प्रति अपने भाव बदलने की।

जीवन को बस ऐसा करलो कि जहां हो;

वहां सभी हमसे प्रेम करें और जहां से हम चले जाएं; वहां सभी हमें याद करें।

असली घर तो सबके दिलों में होता है-

जो हमारी देह त्यागने पर भी खाली नहीं होता

और हमारा अस्तित्व बरकरार रखता है।

कबीर जी फर्माते हैं -

काल हमारे संग है, कस जीवन की आस।

दस दिन नाम सम्भार ले, जब लग पिंजर सांस॥

काल-हर समय हमारे संग ही है, हम इससे बच नहीं सकते।

तो फिर जीवन से आस (आशा) किसलिए करना?

दस दिन का यह जीवन है, उसमें राम नाम का सुमिरन कर लो।

इस शरीर रूपी पिंजरे में, जब तक सांस है-तभी तक जीवन है।

उस पर काल का परहार तो होना ही है-

अतः राम नाम लेकर अपना जीवन सुधार लो।

24.7.1893
17.5.1970

ऊंचे जीवन के लक्षण

✍ पंडित श्री ऋषिराम

संसार में जितनी भी जातियां हैं, उनकी कुछ-न-कुछ विशेषता है।

भारतवर्ष की विशेषता है-इसकी आध्यात्मिकता।

इसका प्रत्यक्ष, भारत के इतिहास को देखकर होता है। बहुत अधिक प्राचीन सभ्यता के विषय में कहना तो केवल कपोल कल्पित कथाएं ही हैं। किन्तु गौतम बुद्ध की तारीख निश्चित है। इस समय की संस्कृति व साहित्य में हम पूर्णयता परिचित हैं। गौतम बुद्ध का समय आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व का बताया जाता है। इन वर्षों में और भी अनेक राजा हुए, किन्तु आज उनका कोई भी चिह्न नहीं। पारसी संस्कृति को, जो आज हम इतने ऊंचे शिखर पर देख रहे हैं- वह भारत की कृपा का ही परिणाम है। भारत की यह विशेषता रही है कि वह, सदैव सब जातियों का और सब धर्मों का स्वागत करता रहा है और सबको अपने अन्दर आत्मसात करता रहा है।

85 प्रतिशत लोग हिन्दू धर्म को किसी-न-किसी रूप में मानते हैं। विवाह व अन्य संस्कारों में, उनके यहां भी हमारे समान अग्निहोत्र होते हैं। धार्मिक क्षेत्र में भारत वर्ष सब देशों से आगे है। पिछले सौ वर्षों में जितने महात्मा भारतवर्ष में पैदा हुए हैं, अन्य किसी देश में नहीं हुए; जैसे - स्वामी दयानन्द, महर्षि रमण, श्री

अरविन्द टैगोर, विवेकानन्द और महात्मा गांधी इत्यादि। संसार आश्चर्य करता था कि इस कूड़े करकट में से इतने महात्मा कहां से निकल आये? इन ज्ञानियों के जीवन का आधार धार्मिक ग्रन्थ–गीता, वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि हैं। गांधीजी कहा करते थे कि 'गीता मेरी मां है' इसलिए 30 वर्ष तक निरन्तर उनकी प्रार्थना में गीता का पाठ होता रहा था। गीता तो इतना विशाल और महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थ है कि तिलक, गांधी, विनोबा भावे आदि अनेक विद्वानों ने इसकी टीका की है। इन महापुरुषों का जीवन, इन धार्मिक ग्रन्थों का प्रतिबिम्ब है।

विद्वानों ने भी कहा और वेद शास्त्रों ने भी-कि इस शरीर, मन, इन्द्रिय और बुद्धि से ऊपर भी कोई शक्ति है – जो कि सबमें एक समान है। अन्यथा इन स्थूल शक्तियों की स्थिति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। सब कहते भी हैं और हम जानते भी हैं कि मेरा 'मन' कभी शोक में है और कभी चिन्ता में। मन, सबके पास है और बुद्धि भी, किन्तु कोई कोई व्यक्ति विशेष ही बुद्धिमान निकल जाते हैं। जीवात्मा की स्थिति इन सबसे भिन्न है। वहां आनंद के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

सब मानते हैं कि जीवात्मा (Being) – है।

शरीर नश्वर है और जीवात्मा अमर है।

शास्त्रों ने बताया कि मन और बुद्धि; जीवन के बाहरी अंग हैं और ये जीवन की नींव हैं। किन्तु साथ ही यह भी निश्चित है कि; जहां हमें उनके द्वारा सुख मिल रहा है-वहां दु:ख भी उनके साथ लगा हुआ है। इस शरीर के साथ मृत्यु, दु:ख, रोग, बुढ़ापा-सब कुछ लगा हुआ है। प्रकृति के नियम अटल हैं। सुख और दु:ख सदैव स्थयी नहीं रहते। सुख के बाद, दु:ख का आना निश्चित है। सांसारिक भोग समाप्त हो जाने वाले हैं।

बौद्धिक दृष्टि से यह जीवन चाहे जितना भी विशाल हो जाय; किन्तु यदि 'अन्दर' कुछ नहीं है-तो वह जीवन, जीवन न रहकर जेल बन जाता है।

यह स्थिति, आज हमें अपने और अन्य-सब परिवारों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यदि इस स्थिति से ऊपर उठना है, तो कम-से-कम तीन बातों का हमें विशेष ध्यान रखना होगा –

1) मेरा शरीर अन्तिम दिन तक स्वस्थ बना रहे।

2) मेरा जीवन पूर्ण स्वतंत्र हो, न कोई मेरे ऊपर बोझा हो–ना मैं किसी पर।

3) हमारे अन्दर कुछ जीवात्मा का ज्ञान भी हो। शास्त्रों ने रास्ता बता दिया है। मार्ग खुला है। हम आगे बढ़ें या न बढ़ें – वह हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर है।

आज हिन्दू परिवार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होगा-जिसके जीवन में थोड़ी सी भी धार्मिकता न हो। सभी चाहते हैं कि हम किसी-न-किसी प्रकार, प्रभु के दर्शन कर लें। जीवात्मा के विषय में, ऐसा गहरा ज्ञान अन्य किसी देश के साहित्य में नहीं मिलता। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस जीवात्मा के विषय में लिखा है कि; वहां अनंत का वायुमण्डल है और बुद्धि का केवल मात्र विकास है। जीवात्मा के विषय में इतनी गहरी चर्चा और उसका जीवन में समावेश – भारत के सिवा, अन्य देश में कहीं नहीं है। विदेशों में सौंदर्य है और धन है, किन्तु यह ऊंचा ज्ञान नहीं है। वे लोग, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से हमारे से अधिक ऊंचे हैं;

किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से आज भी भारत ही सर्वश्रेष्ठ है।

विदेशी लोग भी यह स्वीकार करते हैं कि; यह 'आत्मिक ज्ञान' व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा प्राप्त होगा और; यह व्यक्तिगत अनुभव हमें, भारत जाने पर ही मिलेगा-यहां बैठे नहीं मिलेगा। ❑

12.1.1918
8.2.2008

'भावातीत ध्यान' द्वारा विश्व कल्याण

✍ महर्षि श्री महेश योगी

आज यह भावातीत ध्यान योग पद्धति, इतनी सार्वभौम हो गयी है कि विश्व के प्रत्येक देश में आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। इस योग पद्धति पर-अनेक देश के वैज्ञानिक, डॉक्टर, प्रोफेसर आदि ने शोध, ध्यान साधकों पर परीक्षण आदि किये और सिद्ध किया कि; इसके अभ्यास से मनुष्य का जीवन सात्विक बनता है और तामसी प्रवृत्तियां शान्त होती हैं।

अमरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉक्टर कीथवैलेस को उनकी शोध पुस्तक पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई है। भावातीत प्रयासहीन विधि है, जिसके

कारण यह संसार में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। आज संसार के 15 लाख से अधिक स्त्री, पुरुष व विद्यार्थी-इस ध्यान से लाभ उठा रहे हैं। यह संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। यूरोप तथा अमेरिका में सहस्रों की संख्या में मनुष्य इसे सीख रहे हैं।

इस पद्धति में मन को एकाग्र नहीं करना पड़ता। यम नियम, प्राणायाम का आश्रय नहीं लेना पड़ता। तीस मिनट प्रतिदिन बैठ कर प्राणी (ध्यान द्वारा) अपना लौकिक और पारलौकिक श्रेय सम्पादन कर सकता है। भावातीत ध्यान के व्यावहारिक लाभों-विद्यार्थियों का अनुशासन बद्ध होना, नशों की आदत छूटना, तनावों से मुक्ति आदि के कारण, अनेक सरकारों ने इसका प्रचार अपनी शिक्षा संस्थाओं, अस्पतालों, जेलों आदि में किया। व्यापारी संस्थाओं, खेलकूद की संस्थाओं आदि के लिए अलग अलग प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जाते हैं।

भावातीत ध्यान शैली

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥

मैं शक्ति चेतन जीव में, मन इन्द्रियों का केन्द्र हूं।

मैं अग्नि में हूं तेज, तपियों में तपस्या ज्ञान हूं॥

श्रीमद्भगवद्गीता (10.22 - 7.9) में भगवान् ने अपनी विभूतियों तथा स्वरूप का वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है कि; प्राणियों की 'चेतना'-मेरा ही स्वरूप है। उस चेतना से विहीन प्रणी 'निर्जीव' हो जाता है, और पंचत्व को प्राप्त होता है। फिर भगवान् ने चेतना की विभिन्न श्रेणियों का वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि; 'इन्द्रियों' की चेतना से 'मन' की चेतना करोड़ों गुनी अधिक है। और जो प्राणियों की 'अन्तर्निहित' शुद्ध चेतना है, जो 'जीवन' स्वरूप है, जो सर्व शक्ति सौन्दर्य सम्पन्न है, जो सर्व आनन्द स्वरूप है - वह इसी 'मन की चेतना' का प्रबृद्ध अथवा विकसित स्वरूप है।

चेतना की वृद्धि अथवा चेतना के विकास का क्या अर्थ है?

इसका अर्थ है-'विशुद्धि चेतना'-अर्थात् वह विशुद्ध चेतना, जो स्वयमेव आन्तरिक सनातन सत्यता है।

हमको यह बात कैसे विदित हुई कि यह (विशुद्ध चेतना) आन्तरिक सनातन सत्यता है? जब आप ध्यान करते हैं - तो आप मंत्र को प्रारम्भ करते हैं-तब आपको अनुभव होता है कि

> **मंत्र सूक्ष्म होता जा रहा है। सूक्ष्मतर होता जा रहा है और फिर धीरे धीरे बिल्कुल लुप्त हो जाता है।**

जो मंत्र हमारे अनुभव का विषय है, जब वही लुप्त हो जाता है-

तो शेष क्या बच रहता है? -'विशुद्ध चेतना'।

> **जब आप में मंत्र का लोप हो जाता है - तब आप यह अनुभव करते हैं कि; आप अपने अन्तर में जाग्रत हैं। यद्यपि आप इसके अतिरिक्त और कुछ अनुभव नहीं कर रहे हैं। वह आपकी आन्तरिक 'जागृति' ही; 'चिति' है-'विशुद्ध चेतना' है।**

जब तक मन मन्त्र का अनुभव कर रहा है-वह 'चेतन मन' है। जब अनुभूत विषय (मन्त्र) लुप्त हो जाता है-उस समय चेतन मन, 'विशुद्ध चेतना' हो जाता है।

विशुद्ध चेतना वस्तुतः चेतना का ही विकसित स्वरूप है। मन को मंत्र का अनुभव होता है। फिर सूक्ष्म मंत्र का अनुभव होता है। फिर सूक्ष्मतर मंत्र का अनुभव होता है। फिर सूक्ष्मतम मंत्र का अनुभव होता है और फिर स्वयं ही अपने निज स्वरूप का (विशुद्ध-चेतना) का ।

इस स्थिति में अनुभव का सूक्ष्मतम विषय ही लुप्त हो गया है। यहां मन अपने अतिरिक्त; और कुछ नहीं अनुभव कर रहा है। यही 'विशुद्ध चेतना' है। यही विशुद्ध चिति है। चेतन मन की विशुद्ध 'चेतना स्वरूप' हो गया है। जाग्रत मन-'जागृति मात्र' हो गया है।

यही वह स्थिति है-जिसे विशुद्ध सत्ता कहते हैं।

विशुद्ध सत्ता ही जीव का अस्तित्व है।

जीव का अस्तित्व ही 'जीवन' है। विशुद्ध सत्ता का अर्थ है-विशुद्ध जीवन। विशुद्ध जीवन ही 'चिति' है-अथवा विशुद्ध चेतना है। यही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र 'बोध' है। 'विशुद्ध बुद्धि' हो गया है। यही आभ्यान्तरिक सत्य वस्तु है (जो

त्रिकाल में एक सी रहती है)।

जब मंत्र सूक्ष्मतर, अधिक सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होता जाता है, और मन (अस्तित्व सत्ता) की अधिकाधिक गहरी आन्तरिक मंजिलों (क्षेत्रों) की यात्रा पर अग्रसर होता है-तो यह मन कालान्तर में जीवन सत्ता के अन्तरतम स्तर पर पहुंच जाता है, जहां पर यह 'विशुद्ध चेतना' के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। अतः अभिव्यक्त सृष्टि के क्षेत्र से मन, 'अनभिव्यक्त विशुद्ध चिति के क्षेत्र' पर पहुंचता है। यहां हम एक और विशेषण का उपयोग कर रहे हैं-अर्थात् 'अनभिव्यक्त' का जो 'विशुद्ध चेतना' का वाचक है।

प्रत्येक वस्तु, जो भी अनुभव का विषय है - वह 'अनभिव्यक्त विशुद्ध चिति' अथवा 'विशुद्ध सत्ता' की ही; अभिव्यक्ति मात्र है।

(1936-2009)

साधना

✍ **डॉ० शम्भूनाथ**

जीवन को साधने के लिए सभी, कुछ साधनों का प्रयोग करते हैं।

जीवन साधने की शक्ति, जीवन प्रदान करने वाले में है।

कहते हैं कि जीवन, ईश्वरीय तत्व प्रदान करता है।

यदि साधना ऐसी हो कि जीवन को साधने वाली शक्ति, स्वयं ईश्वरीय तत्व हो-तो शायद, इससे ऊँची साधना सम्भव नहीं होगी।

सबके शरीर में एक जीवात्म विराजमान है। इस जीवात्मा के पास दो ही रास्ते हैं-या तो यह उत्थान के रास्ते पर चलने लगे, या पतन के रास्ते पर।

यह सृष्टि दो भागों में विभाजित है-अनुभव का क्षेत्र (Relative Field) और अनुभव से परे क्षेत्र (Absolute Field)।

जीवन के उत्थान का अर्थ, केवल इतना है कि ईश्वरीय तत्व का प्रवाह 'अनुभव के परे क्षेत्र' से 'अनुभव के क्षेत्र' की ओर जीवन काल में समय के साथ साथ बढ़ता ही चला जाए। बिल्कुल इसी तरह जीवात्मा के पतन के रास्ते पर ईश्वरीय तत्व का प्रवाह अनुभव के क्षेत्र में, आयु बढ़ने के साथ साथ कम होता चला जाता है।

ईश्वरीय तत्व ही हमें जीवन प्रदान करता है।

अपने जीवन के अनुभव की शक्ति के आधार पर भी यही अनुभव होता है कि; मृत्यु तो केवल उस समय आती है-जब शरीर में जीवात्मा नहीं रह जाती।

जीवात्मा ईश्वरी तत्व का भण्डार है।

जब ईश्वरीय तत्व का भण्डार ही नहीं है-दूसरे शब्दों में जीवन प्रदान करने वाले तत्व का भण्डार ही नहीं है-तो जीवन कैसे रह सकता है? ईश्वर का ध्यान सीखते समय भी हमने देखा कि ज्यों ज्यों ध्यान का अभ्यास (Meditation) बढ़ता है-जीवन प्रदान करने वाले इस तत्व का प्रभाव, अनुभव के क्षेत्र के अलग अलग पहलुओं पर पड़ता है और; धीरे धीरे जीवन सुख की ओर बढ़ता चला जाता है। ऊपर हमने देखा कि

ईश्वर के ध्यान द्वारा हम अपने जीवन को साधने में ईश्वरीय तत्व की मदद लेते हैं-जो हमें सब कुछ देने की शक्ति रखता है।

जीवात्मा के उत्थान के रास्ते पर केवल सुख ही सुख है। पतन के रास्ते पर जीवन धीरे धीरे दुःख की ओर अग्रसर होता है। इसलिए जो लोग शिक्षा की कमी के कारण, जीवात्मा के उत्थान के रास्ते को पाने में असमर्थ हो जाते हैं-वे कभी कभी ऐसी साधनाओं का सहारा लेने लगते हैं-जिनके द्वारा पतन की गति धीमी हो सके। जिससे यदि जीवन दुःख से सुख की ओर नहीं मुड़ सकता, तो कम-से-कम इतना तो हो जाए कि दुःख की ओर धीरे धीरे अग्रसर हो। समाज में ऐसे बहुत से लोग पाए जाते हैं, जो बड़े गर्व से कहते है कि; मेरी इतनी अधिक उम्र होने पर भी, अभी मैं बिना किसी की सहायता के चलने योग्य हूं। जब वे ऐसा कहते हैं-तो उनका मतलब यह कभी नहीं होता कि उनका स्वास्थ्य-जैसे पांच वर्ष पहले था, अब उससे भी अधिक अच्छा है। उनके कहने का तात्पर्य तो केवल इतना है कि उनका स्वास्थ्य खराब जरूर हो रहा है-लेकिन दूसरे, जो उनकी उम्र के हैं- उनका स्वास्थ्य उनसे भी ज्यादा खराब है। समय बीतने के साथ साथ स्वास्थ्य खराब हो रहा है; क्योंकि जीवात्मा पतन के रास्ते पर है। भले ही किसी का पतन तेजी से हो और किसी का धीरे धीरे-लेकिन जीवात्मा के उत्थान के रास्ते पर, जीवन के अनन्त पहलू, समय के साथ साथ केवल सुख की ओर बढ़ते हैं,

दु:ख की ओर नहीं बढ़ते।

वेद का हर अध्याय, तीन भागों में बंटा हुआ है-कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। साधनाएं अनन्त हैं-साधना चाहे जीवात्मा का उत्थान करने वाली हो, चाहे पतन की गति कम करने के लिए की जाए। साधना करने के लिए- या तो सकाम कर्म की मदद लेनी पड़ती है, या निष्काम कर्म की-अर्थात् प्रयासपूर्ण कर्म की, या प्रयासहीन कर्म की। जीवन में केवल दो संभावनाएं हैं-या तो साधक कुछ करता है और कभी कभी ऐसा भी होता है कि वह कुछ नहीं करता।

ईश्वर की महिमा इतनी अपरम्पार है कि; साधक चाहे कुछ कर के सब कुछ पा ले और; चाहे 'करने' और 'न करने' से परे 'होने' का समय बढ़ाए और जीवन में ऊपर उठता चला जाय।

ऐस केवल तब संभव होता है-जब वह ध्यान के अभ्यास द्वारा 'मैं' से परे क्षेत्र में, ज्यादा देर रहने लगे।

मन के पास दो दुनियां हैं -बाहर की दुनियां और अन्दर की दुनियां।

अपने स्वभाव से मन दोनों ही दुनियां में गतिशील रहता है।

जब मन बाहर की दुनियां में रहता है-उस समय जो भी विचार मन में उठते हैं, उन्हें सकाम कर्म कहते हैं। जैसे कि सन्धि विच्छेद बताता है; 'काम' का अर्थ-'उत्तेजना' और 'स' का अर्थ है-'सहित'। कर्म विचार को कहते हैं। मन बाहर के जिस क्षेत्र में रहता है-उस क्षेत्र में उत्तेजना मन में रहती है।

उदाहरण के लिए-यदि कोई मनुष्य क्रिकेट का खेल देख रहा है-तो उस समय भले ही वह स्वयं न खेल रहा हो, उसके मन में जितने भी विचार उस समय आते हैं-उनमें खेल सम्बन्धी उत्तेजनायें रहती हैं। इसलिए, जो विचार उस समय मन में आते हैं-उन विचारों को सकाम कर्म कहते हैं। सकाम कर्मों द्वारा उत्तेजना, मन में समाती हैं।

जब मन बुद्धि से परे होता है-तब भी विचार उठते हैं, परन्तु इन विचारों द्वारा मन की उत्तेजनायें निकलती हैं, या वह उत्तेजना रहित होता है।

उपरोक्त ऐसे कर्मों को, सूक्ष्म कर्म कहते हैं। इनमें उत्तेजना कुछ कम होती हैं।

कर्म का सम्बन्ध, मन की गतिशीलता से है।

चाहे निष्काम भावों के स्तर का हो, या सकाम के स्तर का।

अब यह समझना बहुत आसान है कि कर्मकाण्ड, वह अध्याय है-जिसमें तरह तरह के उन स्थूल कर्मों की व्याख्या है, जिनकी मदद से हम तरह तरह की स्थूल साधना करते हैं। कर्मकाण्ड किसी साधना का नाम नहीं है।

ईश्वर की उपासना; वह भाग है-जिसमें यह बताया गया है कि वे सारी साधनाएं-मात्र ऊँची से ऊँची चेतना में, गहरे से गहरे आराम को प्राप्त होने से; अपने आप कैसे होने लगती हैं ?

ईश्वर की महिमा इतनी अपरम्पार है कि चाहे कुछ त्याग करके जीवात्मा का उत्थान कर ले और; चाहे बिना त्याग किए। ईश्वर के ध्यान की विधि के किसी स्तर पर, कुछ छोड़ने या पकड़ने की बात नहीं है। जब अभ्यास काफी बढ़ जाता है-तो ध्यान करने वालों के जीवन में यह देखा जाता है कि उन्हें जो कुछ छोड़ना चाहिए, वह स्वयं छूटने लग जाता है। छोड़ने में कष्ट हो सकता है; छूटने में कष्ट नहीं भी हो सकता।

उदाहरण के लिए-हम मान लें कि कोई मनुष्य हमेशा राजसिक भोजन के भोग जीवन में करता है। बिना ऐसे भोग को छोड़े-ईश्वर की उपासना का अभ्यास करने लगता है और समय बीतने के साथ साथ ईश्वरीय तत्व का प्रवाह मन, बुद्धि और शरीर में होने लगता है - तब उसके भोजन में स्वभावत: परिवर्तन आने लगता है। ऐसे उदाहरण हमें यह बताते है कि सत्व का प्रभाव है और; हम देखते हैं कि ऐसी स्थिति में उसे स्वाभाविक रूप से कौन सा भोजन अच्छा लगता है।

मन, बुद्धि और शरीर में यदि सात्विकता नहीं है और केवल बौद्धिक स्तर पर समझ कर हम अपना भोजन बदलते हैं-तो यह बदला हुआ भोजन, हमारे स्वास्थ्य पर वह प्रभाव नहीं डाल पाता-जो कि उस समय होता है, जब भोजन अपने स्वाभाविक प्रकृति के कारण इसलिए बदलता है-क्योंकि सत्व के उभार ने स्वाभाव ही बदल

दिया है।

ईश्वर की साधना हमें यह बताती है कि ईश्वरीय तत्व ही हमें जीवन देने वाला है और ईश्वरीय तत्व का उभार ही, हमारे जीवन को बाहर के अलग अलग अनन्त पहलुओं को अनन्त स्तर तक सुखदायी बनाने वाला है।

उप का अर्थ - समीप। आसन का अर्थ - स्थान।

ईश्वर की उपासना का अर्थ हुआ - ईश्वर के समीप की जगह।

हमारे पास मन और शरीर हैं। शरीर बहुत स्थूल है और 'ईश्वरीय तत्व' सुक्ष्मता की चरम सीमा पर है। इसलिए शरीर कभी भी ईश्वर के समीप का आसन ग्रहण नहीं कर सकता। ईश्वर (असीम) - बुद्धि (सीमित) से परे है। इसलिए बुद्धि, ईश्वर के समीप का आसन ग्रहण नहीं कर सकती।

ईश्वर के समीप आसन ग्रहण करने की शक्ति तो केवल मन में है।

इसलिए कितना आसान है यह समझना कि; ईश्वर की उपासना-जो कि ईश्वर का ध्यान है-मन की साधना है, बुद्धि और शरीर की साधना नहीं है। इसलिए ईश्वर का ध्यान सीखते समय-हमनें ईश्वरीय शक्ति को हमेशा, मन की शक्ति के रूप में देखा। ज्यों ज्यों मन अपना समय इस साधना में बढ़ाने लगता है-मन में ईश्वरीय तत्व के गुण उभरने लगते हैं।

मन ईश्वरीय तत्व को अपने में उभारने के रास्ते पर चले-

यही जीवात्मा के उत्थान का रास्ता है।

जब हम इस रास्ते पर चलते हैं-तो वे सारी साधनाएं

इस रास्ते पर अपने आप कैसे होने लगती हैं?

ऊपर हम लोगों ने देखा कि कर्मकाण्ड, किसी साधना का नाम नहीं है; बल्कि उन कर्मों का अध्याय है-जिन कर्मों के माध्यम से तरह तरह की साधनाएं; जैसे-तप, सेवा, सुमिरन, भजन आदि किये जा सकते हैं।

उपासना द्वारा तप, सेवा, सुमिरन और भजन-स्वयं होने लग जाते हैं।

इसी तरह ज्ञान काण्ड में यह बताया गया है कि शुद्ध ज्ञान (Pure Consciousness)-जिसे हम आनन्द (Bliss) के रूप में अनुभव करते हैं

और जो कि आनन्द की चरम सीमा की अनुभूति है; की मदद से सारी साधनाएं जैसे तप, सेवा, सुमिरन और भजन आदि-स्वतः होती ही रहती हैं।

जीवन में कोई भी साधना अपनाएं; लेकिन हमेशा ही साधना को शिक्षा का रूप देना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जीवन ज्यों ज्यों आगे बढ़े-साधना चाहे न बदले, लेकिन वह शिक्षा ऊँची कक्षा की जरूर हो जानी चाहिए।

कर्मकाण्ड के ज्ञान के आधार पर मनुष्य, जीवन में बहुत बड़ी बड़ी शक्तियां प्राप्त कर सकता है; लेकिन यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए-तो

जितने उच्च स्तर तक-वह उपासना की मदद से उठ सकता है, शायद कर्मकाण्ड की मदद से नहीं उठ सकता।

रामायण के टी.वी. सीरियल में जब यह दिखाया गया कि वशिष्ट मुनि; राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को कुण्डलिनी जागृत करने की (जो कर्मकाण्ड की बहुत उच्च स्तर की शिक्षा है)-शिक्षा दे रहे थे-उस समय यह बताया कि, सम्भावनाएं दो हो सकती हैं-

कुण्डलिनी जागरण करने वाला; रावण भी बन सकता है और राम भी।

इस शक्ति का दुरुपयोग न हो; इसके लिए यह आवश्यक है कि कुण्डलिनी का जागरण, केवल उच्च स्तर के गुरु की निरीक्षण में ही होना चाहिए।

लेकिन उपासना के रास्ते पर, यदि शक्ति जागृत नहीं होती और यदि होती है-तो शक्ति में आनन्द (Bliss) है। यह आनन्द, शक्ति का दुरुपयोग होने ही नहीं देता।

ईश्वर की उपासना के रास्ते पर क्रियाओं से परे, या तीनों गुणों से परे जाने का अभ्यास किया जाता है। समाज में, न जाने कितने लोग तो उस बात पर आश्चर्य प्रगट करते हैं कि भगवान ने अर्जुन को केवल आंख बन्द करके बैठना सिखाना शुरू कर दिया। आज का साधारण मनुष्य इन सब बातों को सुनकर इतने असमंजस में पड़ जाता है कि हमारे इतिहास की इस घटना को केवल, काल्पनिक कहानी के रूप में लेने लग जाता है।

लेकिन वे साधक गण, जो कुछ दिनों से ईश्वर के ध्यान (Meditation) का निरन्तर अभ्यास कर रहे हैं, वे केवल अपने अभ्यास के आधार पर इस बात को समझने योग्य हो चुके हैं।

उन्हें इस बात का ज्ञान है कि ईश्वर की उपासना तो केवल, ऊँची से ऊँची चेतना में गहरे से गहरा आराम लेने की विधि है। भगवान श्रीकृष्ण ने (भ० गीता 2. 69) अर्जुन को रात्रि के समय का सदुपयोग सिखाया-क्योंकि लड़ाई केवल दिन में होती थी।

जो शक्ति नित्य लड़ाई में खोते थे-वह अगले दिन सुबह उन्हें वापस मिल जाए, ऐसी विद्या का ज्ञान देना, गलत कैसे हो सकता है?

विशेष रूप से अर्जुन के लिए, जो कि निद्रा को जीत चुके थे - रात्रि का सबसे ज्यादा सदुपयोग, केवल उपासना की साधना द्वारा सम्भव था-जिस साधना द्वारा जीवन को सफलता के क्षेत्र में ले जाने वाली सारी शक्तियां-अपने आप उभरने लगती हैं।

उपासना की मदद से जीवात्मा का उत्थान होने लगता है। ज्यों-ज्यों लड़ाई आगे बढ़ी, इच्छा शक्ति और 'होनी की शक्ति' के सहारे, पाण्डव सफलता की ओर बढ़ते चले गए।

जो सबसे उच्च स्तर की तपस्या, सेवा या सुमिरन है - वह ईश्वर की उपासना द्वारा की जाती है। कर्मकाण्ड द्वारा जो तप, सेवा और सुमिरन होता है-वह इतने ऊँचे स्तर का नहीं होता। इसी तरह शुद्ध चेतना (Pure consciousness) की मदद से जितने ऊँचे स्तर की सेवा या तपस्या हो जाती है-वह ईश्वर की उपासना से भी नहीं हो सकती। तो हम यह देखते हैं कि यदि साधना को शिक्षा का रूप दे दिया जाए और साधना के सबसे ऊँचे स्तर पर जाने की बात यदि जीवन में आ जाए-तो कर्मकाण्ड के साधक को भी आगे चल कर, ईश्वर की उपासना की शरण लेनी पड़ेगी-जैसा कि अर्जुन के जीवन में हुआ। यदि हम जिन्दगी भर नीचे दर्जे की सेवा करते रहे-तो साधकों और साधारण मनुष्यों में कुछ बहुत बड़ा अन्तर दिखायी नहीं पड़ेगा।

साधना-प्रयासपूर्ण की मदद से भी शुरू की जा सकती है, उपासना की

मदद से भी की जा सकती है। परन्तु बहुत ऊपर जाने के बाद, कर्मकाण्ड के साधकों को भी उपासना की साधना की शरण में आना पड़ता है। जिन साधकों को सप्त चेतनाओं का ज्ञान है-वे भली भांति जानते हैं कि जब साधक, पूर्ण रूप से छटी चेतना में प्रवेश कर जाता है-तब उसके जीवन का हर कर्म, मात्र साधना ही होता है और जीवन पूर्ण रूप से प्रयासहीन हो जाता है। इस स्तर के पश्चात ही; वह विशुद्ध चेतना की अवस्था में जायेगा। अत: स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में कुछ भी करने की-अर्थात् प्रयास की आवश्यकता नहीं होगी। ❑

करिए ध्यान, बनिए महान

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (मो० 09991846415)

आप सबने सुना होगा-किसी न किसी महान् व्यक्ति के बारे में। और यह भी सुना होगा कि; उसके महान् बनने के पीछे, कहीं न कहीं ध्यान का हाथ जरूर होगा। कहीं मां ने तो; कहीं उनके गुरु ने उनको यह रास्ता बताया होता है-वे इस रास्ते पर चले और पा लिया महानता के खिताब को।

ऐसे ही अकबर के खास सलाहकार- 'बीरबल' का नाम भी सबने सुना होगा कि वे कितने हाजिर जवाब और समझदार होने का कारण भी; कहीं उनकी मां द्वारा पांच साल की उम्र में 'ध्यान का अभ्यास' करवाना ही था। मैंने सुनी एक कहानी; कि एक बार अकबर के राज्य में से एक आदमी एक पाव भर चूना लेने आया-बीरबल के पास। बीरबल देखते ही बोला कि यह चूना राजा ने तुम्हें खाने को देना है क्योंकि तुमने कोई गलत काम किया -जिसकी सजा दी जाएगी। पर तुम कल जब दरबार में चूना लेकर जाओगे-तो घर से एक पाव भर घी पी जाना-जिससे यह चूना तुम्हें नुकसान नहीं करेगा। अगली सुबह जब दरबार में वह आदमी गया-तो उसने राजा से कहा कि वह चूना मैं खा लूं-तो राजा हैरान। तुम्हें कैसे पता चला कि मैंने चूना तुम्हें खाने के लिए मंगवाया है? तो उसने कहा कि मैं- जिस दुकान पर चूना लेने गया-वहां 10 साल का बच्चा बैठा था। उसने मुझे बताया और मुझे बचने का मार्ग भी बताया। राजा ने उस बच्चे को बुलाया और पूछा कि; तुम यह सब कैसे जान गए? तो उसने बताया कि जब पांच साल का था-तो मेरी मां ने तब से 'ध्यान का मार्ग' बताया और; मैं बराबर ध्यान कर रहा हूं।

राजा बहुत खुश हुआ। उसने उसे तब से ही दरबार में अपना सलाहकार नियुक्त किया और; खुद भी ध्यान का अभ्यास (Meditation) आरम्भ किया। ऐसे ही हम सुनते हैं कि महात्मा गांधी भी ध्यान के बल पर ही इतने बड़े काम कर पाए।

श्री लाल बहादुर शास्त्री भी-जहां तक मोदी जी को देख रहे हैं;
इतने बड़े बड़े काम जो कर रहे हैं; वे भी ध्यान के पुजारी हैं।

एक सत्य और आप सबको बताते हैं कि ध्यान क्यों जरूरी है?

इससे आदमी स्वस्थ रहता है। जो ठीक रहेगा-उसके विचार हमेशा ठीक, वह हमेशा खुश। कहने का मतलब कि सब कुछ - Positive।

रोज हमारा दिल; सात हजार लीटर खून पंप करता है-जिसका 70% हमारे दिमाग में जाता है और बाकी का 30% पूरे शरीर में। खून हमारी धमनियों के माध्यम से पंप करता है। इन धमनियों की लम्बाई 70 हजार किलोमीटर होती है। हमारे हृदय के द्वारा रोज, उतनी शक्ति पैदा की जाती है-जितनी शक्ति 1 टन वस्तु को 42 फुट ऊपर ले जाती है। हम थकते हैं-तो आराम करते हैं। कहीं दिल ने आराम किया-तो हम गए।

जब हम आराम करते हैं-तो रक्त फेफड़ों से होकर 100% शुद्ध हो जाता है। तनाव के समय केवल 70% शुद्ध हो पाता है - क्योंकि तनाव के समय शरीर को कम समय में अधिक रक्त की जरूरत होती है।

कहने का मतलब यह है कि आराम के समय, धमनियों पर जोर कम पड़ता है-जिससे वह अपना काम आराम से करती हैं और; तनाव के समय उन्हीं धमनियों को अधिक जोर लगाना पड़ता है-जिससे कोई अवरोध आने पर भी वह सुचारू रूप से काम नहीं कर पातीं। तभी ये हार्ट अटैक का रूप भी ले लेती हैं।

इन सबको देखते हुए हम कह सकते है कि ध्यान करने वाले को यह सब बीमारियों से बचना नहीं पड़ता; बल्कि वह अपने आप ही सब ठीक हो जाता है।

चिंता, भय, क्रोध, दुःख और अशान्ति को रोकने की दवा नहीं है; बल्कि यह ध्यान मुक्ति का एकमात्र मार्ग है। तभी कहा जाता है कि 'अध्यात्म' ही सबसे अच्छा मार्ग है। हाथ जोड़, मेरी आप सबसे प्रार्थना है -ध्यान को जल्दी अपनाकर, अपने

अनमोल मानव जीवन को सार्थक बनाइए।

ध्यान करने का तरीका - सिर्फ दिन में तीन बार 30-30 मिनट आंख बन्द करके किसी कुचालक पर बैठकर एक बार राम का नाम, मन में लेकर आराम (Relax) करना है। जो हो रहा है - उसे होने देना है। न कुछ करना है और; न करने की सोचना है। लो हो गया आपका ध्यान।

शायद यह वक्त; फिर न आएगा?

मत सोचो कि समय नहीं है, इक पल का भी फल मिलता है।
कर्म किया आज जो तुम ने; बदला इसका कल मिलता है॥
मत सोचो कि क्या जल्दी है? आज नहीं तो कल कर लेंगे।
क्या भरोसा कल का प्यारे? कल-कल करके हम मर लेंगे॥
मत सोचो मैं प्रौढ़ हो गया, जर व्याधी ने घेरा है।
ध्यान योग के अमृत जल ने, दुःखों पर पोचा फेरा है॥
मत सोचो, है सागर गहरा; कैसे पार उतर पायेंगे?
तारक मंत्र 'ध्यान योग' से, सारे काम सुधर जायेंगे॥
ध्यान योग के चप्पू से ही, तुरंत किनारा मिल सकता है।
धरती सम, तल शुद्ध नरम हो; बीज तुरन्त ही उग जाता है॥
ध्यान योग से शीघ्र ही, हृदय ग्रन्थी खुल जाती है।
दूर बहुत है, राह कठिन है; फिर भी मंजिल मिल जाती है॥
ऋषि मुनि व योगी सब ने, इस पथ को अपनाया है।
इसी रास्ते चलकर, 'वस्ती' मुक्ति पद उन्होंने पाया है॥

नियमित ध्यान के लाभ

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

साधक को हम गहरा आराम (विश्राम) करना सिखाते हैं। जिसे 'ध्यान' कहते हैं।

आज के समय में जो सुविधाएं साधारण मनुष्य को प्राप्त हैं-पहले राजा महाराजाओं को भी प्राप्त नहीं थीं। बटन दबाते ही पंखा, हीटर, बल्ब, गर्म पानी, ठंडा पानी आदि की सुविधा, अब ही तो है।

दुर्भाग्य से कमी आई है-तो केवल आराम की आई है।

प्रात: उठते ही आपा धापी, भाग दौड़ आरंभ हो जाती है। रात को देर तक टी.वी. आदि देखने के बाद थककर मजबूरी में लेट कर, नींद द्वारा अगले दिन के काम करने की शक्ति प्राप्त करते हैं। प्रात: तरो ताजा अवस्था में बैठ कर आराम (Relax) करने से कई गुणा अधिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

प्रात:काल का 'ध्यान', पहले दिन ही अपना असर दिखा देता है।

इस 'ध्यान से प्राप्त शक्ति' द्वारा आपके असम्भव कार्य भी पूरे हो जाते हैं। 'करने की शक्ति' से, ध्यान द्वारा प्राप्त 'होनी की शक्ति' बहुत बड़ी होती है। इससे कई असम्भव कार्य सफल हो जाते हैं। आत्म बल व इच्छा पूर्ति शक्ति बढ़ती है, जिससे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

यह ईश्वर का 'सहज ध्यान'-बिना किसी बन्धन के, किसी समय बैठने से लाभ ही लाभ को देने वाला है। गाड़ी, बस, जीप के अन्दर यात्रा करते समय हम बड़े मजे से ध्यान कर सकते हैं। संत कबीर फर्माते हैं :-

दु:ख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दु:ख काहे को होय॥

कोई व्यक्ति दु:ख खत्म करने के लिए-ध्यान के लिए बैठता है, उसका दु:ख दूर हो जाता है। इसे 'सकाम ध्यान' कहते हैं। सुख के दिनों में भी ध्यान के लिए बैठने को 'निष्काम ध्यान' कहते हैं। सबसे अच्छा यह है कि सुख हो, चाहे दु:ख; हमेशा ही ध्यान के लिए नियमित बैठना चाहिए।

प्रश्न: मुझे ध्यान के समय कोई विचार नहीं आता?

उत्तर: यह शुभ लक्षण इसलिए है कि पिछले जन्मों के संस्कारों को खत्म करके अब 'विचार हीन' हो गए-अथवा दुर्भाग्य से इतने अधिक संस्कार, विचार-आपमें ठूंस ठूंस कर भर गए हैं कि वे निकल नहीं पा रहे; फिर भी यदि आप ध्यान के

लिए निरंतर बैठते ही रहे-तो आपका जीवन पहले से अधिक आनन्दित और सुखी होता जाएगा।

प्रश्न: मुझे जब भी काम से फुर्सत मिलती है - मैं ध्यान के लिए बैठ जाता हूं।

उत्तर: यह ठीक नहीं है। सबसे ठीक तो यह है कि; फुर्सत हो या नहीं-परन्तु सब कामों को छोड़कर, दिन में 2-3 बार तो ध्यान के लिए अवश्य बैठना ही चाहिए। अन्यथा धीरे धीरे फुर्सत मिलने के सिद्धान्त से 'ध्यान के लिए' बैठने की याद ही नहीं आती। फिर भगवान की दया के कारण बड़ा दु:ख आने पर ही 'ध्यान की याद' आ जाती है और हम अपनी गलती पर पछताते हैं। इसलिए बहुत बड़े साधक को भी प्रतिदिन ध्यान के लिए बैठने का नियम चालु ही रखना चाहिए। फिर बाकी-फुर्सत मिलते ही, ध्यान के लिए बैठना ठीक रहता है।

ईश्वर सब कुछ जानने वाला, सब कर्मों का उचित फल देने वाला, सब जगह मौजूद है, मान लेने से ही हमारे में सुधार होने लगता है। उपासना अनुभव हो जाने पर, तो वारे न्यारे हो जाते हैं। बाहर के बहुत अच्छे अच्छे काम करके स्वर्ग आदि-सब कुछ मिल सकता है। परन्तु मोक्ष तो केवल अपने अन्दर से, अपने विचारों के अनुसार एकान्त में रहने से ही प्राप्त होगा। अपना कल्याण तो, अपने द्वारा ही होगा।

बाहर से पुस्तकों, महात्माओं, सत्संगों, गुरुओं, सम्बन्धियों द्वारा केवल ठीक रास्ते पर चलने की प्रेरणा ही मिलती है।

प्रश्न - आनंद संतुष्टि, शान्ति आदि-सब कुछ प्रदान करने वाले 'सहज ध्यान' साधना को सभी क्यों नहीं करते?

उत्तर: सभी मनुष्य मजबूरी में सोकर 'ध्यान साधना' अवश्य करते हैं-इस आराम को अपनी खुशी से, तरोताजा अवस्था में बैठकर करने से लाभ अधिक होता है।

जिस तरह से सोना आग के सम्पर्क में तप कर निखरता है- बिल्कुल उसी प्रकार से मन, मात्र ब्रह्मसुख में तपकर निखरता है। 'नियमित ध्यान' के समय 'पराजगत की शक्ति', मन में पिरोती है और तब ब्रह्मसुख (Bliss) की उत्पत्ति मन में उजागर होती है। इस तरह से मन, ब्रह्म सुख के सम्पर्क में आता है और

साधक अपने मन में ब्रह्म सुख उभार कर 'क्रियाओं के क्षेत्र' में क्रिया हेतु वापिस आता है। इसी को भ. गीता (2.48) में 'योग में सिद्ध होकर कर्म करना' कहा है।

ज्यों ज्यों साधक का अभ्यास बढ़ता है-ब्रह्मसुख का उभरना बढ़ता रहता है और निरन्तर अभ्यास द्वारा, वह हर समय ब्रह्मसुख में लीन रहने लगता है।

ज्यों ज्यों ब्रह्मसुख (आनन्द) की तीव्रता बढ़ती है-मन अधिक निखर कर क्रियाओं में आता है और 'क्रिया जगत' को 'दिव्य शक्तियां' प्राप्त होती हैं। 'दिव्य शक्तियां', जीवन की क्रियाओं को संवारती हैं-जिससे धीरे धीरे हमारा जीवन भी संवतरा है। इस प्रक्रिया से हमारे सभी कार्य सफल होते हैं और हम उन्नति के शिखर पर पहुंचते चले जाते हैं। हर कार्य में हमें कामयाबी मिलती है। इस उपासना से हमें अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड प्रेम, अखण्ड शक्ति, अखण्ड ज्ञान और अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है। ❑

संकट निवारण

✍ श्री रवि प्रकाश कौशिक (09417297254)

दुनियां में प्रत्येक व्यक्ति, हर समस्या का समाधान अपनी बुद्धि से करना चाहता है। उसे अपनी बुद्धि पर बहुत अधिक भरोसा है। संसार में एक दूसरे से बढ़कर ज्ञानवान व अनुभवी व्यक्ति उपस्थित हैं। यदि उनके अनुभव को समझकर, उन द्वारा बताए नियमों का अनुसरन करें-तो जीवन से दुःख भगाया जा सकता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अल्प बुद्धि पर अत्याधिक अभिमान है कि वह किसी विशेष अनुभवी की बात को भी, अपनाने को तैयार नहीं है।

यदि आप जीवन से दुःख भगाना व सुखी जीवन जीना चाहते हैं

तो अधिक से अधिक समय उन व्यक्तियों के सम्पर्क में रहें, जिन्हें आप सुखी समझते हैं। किसी को भी मित्र बनाने से पहले परख लें कि वास्तव में वह सुखी है? परख करने पर पता चलेगा कि केवल ईश्वर ही सगुण, सत्-चित्-आनन्द का भण्डार एवं निराकार शक्ति है। केवल वही इस ब्रह्माण्ड में सुखी है। ईश्वर हमेशा है। उसमें चेतनता है और वह आनन्द का स्त्रोत है। इसलिए केवल वही

सम्पर्क स्थापित करने योग्य है। ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने का रास्ता, केवल ध्यान है। जिसकी शुरूआत माला, जाप, स्तुति, ज्ञान, नाच, प्राणायाम या किसी अन्य तरीके से की जा सकती है। इन अन्य सहायक क्रियाओं को जल्द ही छोड़कर आप ध्यान (होने) की अवस्था तक पहुंच जाते हैं।

जब आपको ज्ञात होता है कि मेरा जाप, माला, ज्ञान या स्तुति छूट गई

तो समझिये, जब यह छुटा था; उस समय से लेकर जब आपको छूटने का आभास हुआ - तब तक के बीच का समय आपका ध्यान लग गया था। इतना समय आप ईश्वर के सम्पर्क में थे। धीरे धीरे नित्य ऐसे अभ्यास से ईश्वर की शक्ति आपके जीवन में प्रकट होने लगेगी - जिसमें सभी प्रकार के संकट व दुःख दर्द दूर करने की क्षमता है। अब यह परिभाषा सिद्ध होगी कि

''जहां प्रभु का नाम होता है, वहां दुःख का लेशमात्र भी नहीं रहता।''

अत: आप सभी से अनुरोध है कि आप 30-30 मिनट; दिन में तीन बार सुबह, दोपहर, सायं-प्रतिदिन ध्यान अवश्य करें और दयालू ईश्वर की संकट निवारण शक्ति का प्राक्टय अपने जीवन में अनुभव करें। ❑

मन का विरचण ही कर्म

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

प्रकृति ने इस सृष्टि को कर्म प्रधान बनाया है।

कर्म, प्रकृति मन द्वारा करती है।

मन के पास दो कर्म भूमि हैं-इन्द्रिय जगत और पराजगत

मन का विचरण ही कर्म है।

इन्द्रिय जगत में विचरण करने के लिए मन, बुद्धि और इन्द्रियों की मदद लेता है। ऐसे कर्मों को प्रयासपूर्ण कर्म कहते हैं।

यदि मन, इन्द्रियों की मदद तो ले, लेकिन बुद्धि की मदद न ले-

तो ऐसे कर्म इन्द्रिय जगत के प्रयासहीन कर्म कहलाते हैं।

यदि मन स्वयं कर्म करे और बुद्धि और इन्द्रिय में से किसी की मदद न ले-तो

ऐसे कर्म 'पराकर्म' कहलाते हैं। इन कर्मों का आधार-मन का विचरण, पराजगत में होता है और इसी को ईश्वर का ध्यान कहते हैं।

मन का विचरण, पराजगत के जितने सूक्ष्म क्षेत्र में होता है-

ध्यान, उतना ही गहरा कहा जाता है।

पराजगत; समस्त शक्तियों का भण्डार है। इन शक्तियों में जो शक्तियां, इन्द्रिय जगत में उपलब्ध होती हैं-उन शक्तियों के विषय में हम कहते हैं कि; ये शक्तियां जागृत अवस्था में हैं। ये शक्तियां ही, हमारी इच्छाओं को 'होनी की शक्ति' के माध्यम से पूरी करती हैं-भले ही हमारी इच्छाएं, इन्द्रिय जगत की क्यों न हों, अर्थात् यदि हमारी कुछ इच्छाएं, पूरी नहीं हो रही हैं-तो इसका एकमात्र कारण यह है कि इस इच्छा की पूर्ति से सम्बन्धित देवी, पराक्षेत्र में सुषुप्ति की अवस्था में हैं।

सारे देवी देवता, शक्तियों के स्रोत होते हैं।

देवी देवता जागृत करने हेतु, 'ध्यान कर्म' की आवश्यकता होती है।

सन्त तुलसीदास ने कहा है, ''जो जस करई सो तस फल चाखा।''

जिस व्यक्ति ने पराकर्म के माध्यम से, पराक्षेत्र के देवी देवताओं को जागृत करके, इन्द्रिय जगत में कर्म नहीं किया-या यह कहें कि बिना उन्हें जागृत किए, इन्द्रिय जगत में कर्म किया-तो ऐसे व्यक्तियों का जीवन अपूर्ण इच्छाओं का जीवन रहना, प्रकृति के विधान के अनुरूप होगा। ऐसे व्यक्ति भी हो सकते हैं-जिनकी इच्छाएं, मात्र 'इन्द्रिय जगत के धन' की प्राप्ति हो और; 'पराधन की प्राप्ति' की ओर, उनका मन ही न मुड़ सके। इन्द्रिय धन, 'पराकर्मों' की कमी में-इन्द्रिय जगत की साधना के माध्यम से भी संभव है। अतः ऐसे व्यक्ति भी समाज में मिलेंगे-जो 'इन्द्रिय धन' पर्याप्त पा जाने के उपरान्त भी; अपूर्ण इच्छाओं का जीवन जिएं।

पराधन प्राप्ति के उपरान्त, मनुष्य के जीवन में 'संतोष धन' आता है।

ऐसे व्यक्ति 'इन्द्रिय धन' के माध्यम से पूर्ण इच्छाओं का जीवन व्यतीत करते हैं और बिना 'इन्द्रिय धन' के भी पूर्ण इच्छाओं का जीवन व्यतीत करने में सफल रहते हैं।

पुराणों में ऐसे अनेक उदाहरण पाए जाते हैं; जैसे-राजा हरीशचन्द्र, भक्त प्रहलाद।

कलयुग में भी ऐसे बहुत उदाहरण मिलते हैं; जैसे-गौतम बुद्ध, ईसामसीह, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, सूरदास और कबीरदास आदि।

इच्छाओं की पूर्ति का संबंध मात्र, 'पराधन' से होता है।

'परा कर्म' ही ध्यान है।

ध्यान; 'आत्म जगत की शक्तियों' को प्राप्त करने का रास्ता है।

इस रास्ते पर अनेक अवस्थाएं हैं। अलग अलग अवस्था की व्याख्या को हम रास्ता नहीं कह सकते; जैसे-विद्यालयों में जाना, विषयों में ज्ञान प्राप्ति का रास्ता है। लेकिन कौन किस कक्षा के ज्ञान को व्यक्त करता है-वह उसकी अपनी अवस्था की व्याख्या है। स्वामी विवेकानन्द की किताबों में भी यही लिखा है-

"Inward march of mind is meditation".

''आन्तरिक क्षेत्र में मन का विचरण ही ध्यान है।''

कर्म ही हमें बताता है कि; हमारा मन कहां है?

जब मन प्रयासपूर्ण कर्मों में रहता है-उस समय वह बुद्धि और इन्द्रियों के साथ रहता है-अतः हम कहते हैं कि मन, बाहर है। ऐसे कर्मों से हमारा 'मैं', हमेशा जुड़ा रहता है। जब मन, इन्द्रियों की मदद नहीं लेता और मात्र विचारों के क्षेत्र में विचरण करता है; जैसे-जब साधक एकान्त में किसी कुचालक पर आंख बंद करके अंधेरे में बैठ जाता है, उस समय उसका मन केवल विचारों की दुनियां में रहता है - तब दो संभावनाएं रहती है,

1) कभी उसके विचार उसके 'मैं' से जुड़े होते है और

2) कभी उसके विचार 'मैं' से जुड़े नहीं होते।

जिस समय उसके विचार 'मैं' से जुड़े होते हैं-मन आन्तरिक जगत और बाहर के जगत के बॉर्डर पर रहता है।

परन्तु जब उसके विचार, उसके 'मैं' से अलग हो जाते हैं-उस समय उसका मन आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करता है और; यही ध्यान (Meditation) है।

इसलिए महान संत कबीर ने भी समझाया कि –

जब मैं था तब हरि नहीं।

जब हरि था तब मैं नाहीं॥

नदी जब समुद्र में मिल जाती है–तब समुद्र में नदी को ढूंढ़ना असंभव होता है।

इसी प्रकार से ध्यान का अर्थ है-'मैं' का हरि से योग।

यदि 'मैं' नदी के समान है-तो 'हरि', समुद्र के समान है।

जितने समय के लिए दोनों का मिलन होता है;

उतने समय तक 'मैं' को ढूंढ़ना असंभव रहता है।

ध्यान के लिए हमें क्या करना है?

हमें निद्रा के लिए स्थान और बिस्तर ढूंढ़ना पड़ता है। इसी तरह से ध्यान तो अपने आप लग जाएगा, लेकिन ध्यान के लिए हमें एकान्त वातावरण ढूंढ़ना चाहिए। एकान्त में अंधेरा करके किसी कुचालक (Bad conduct of electricity) पर आंख बन्द करके मात्र एक बार अपने इष्टदेव को मन में स्मरण करें और फिर मन को स्वतंत्र (Relax) छोड़ दें। मन अपने आप कभी 'मैं' से जुड़ेगा और कभी फिसल कर 'आन्तरिक जगत' में विचरण करने लगेगा।

मन की गतिशीलता का चिह्न, विचारों का उठना है।

आन्तरिक विचरण के समय, जो विचार उठते हैं-उन्हें रोकने की चेष्टा न करें। 'करने' का अर्थ है – 'मैं से जुड़ना' और

'ध्यान' का अर्थ है-'मैं' से अलग हो जाना। 'मैं' से अलग रहने वाले विचार, मात्र निकलते हुए विचार होते हैं। ये निकलते हुए विचार, आन्तरिक जगत की सफाई से सम्बन्ध रखते हैं।

यदि किसी बर्तन में कुछ वस्तु भर दी जाए–तो जितनी जगह वस्तु लेती है, उतनी हवा बर्तन से बाहर निकल जाती है। यदि वस्तु, बर्तन से निकाल ली जाए–तो हवा अपने आप उस खाली जगह में बर्तन में भर जाती है। बिल्कुल इसी प्रकार से

आन्तरिक जगत के कर्मों द्वारा, जितनी ही सफाई मन में हो जाती

है-उसी अनुपात में 'ब्रह्म की शक्ति' मन में पिरो जाती है।

यहां पर बर्तन की तुलना 'मन' से की गई है; वस्तु की तुलना 'निकलते हुए विचारों' से की गई है और हवा की तुलना 'ब्रह्म की शक्ति' से की गई है। अतः हम कह सकते हैं कि

ध्यान वह कर्म है-जो हमारे मन पर पड़े हुए इन्द्रिय जगत के प्रभावों को, बाहर निकाल कर मन में 'ब्रह्म की शक्ति' पिरोने में मदद करती है।

समाज में एक कहावत प्रचलित है कि; सच्चे मन से ईश्वर को पुकारें–तो ईश्वर हमारी अवश्य सुनता है। सच्चे मन का अर्थ है कि वह मन, जो इन्द्रिय जगत के कर्मों से प्रभावित न हो–ऐसे प्रभाव मन में एक मिलावट है–अतः मन सच्चा नहीं रहता। ध्यान कर्म के माध्यम से, आन्तरिक जगत पर–इन्द्रिय जगत के कर्मों का प्रभाव निकालकर, हम अपने मन में 'हरि का प्रसाद' पिरोने में सफल होते हैं और इस 'हरि के प्रसाद' से तर बतर 'मन' ही सच्चा मन है।

इसी के विषय में सन्त तुलसीदास ने कहा है :

जो इच्छा करिहौं मन माहीं।

हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

सृष्टि के समस्त कर्मों का विभाजन दो तरह के कर्मों में हो जाता है; प्रयासपूर्ण कर्म और प्रयासहीन कर्म। प्रयासपूर्ण कर्म बुद्धि और इन्द्रियों के माध्यम से होते हैं और; 'प्रयासहीन कर्म' मन का विचरण, आन्तरिक जगत में –या यह कहें कि बुद्धि और इन्द्रिय से परे होता है। यह आन्तरिक संसार 'मैं' से भी परे होता है। ऐसे कर्मों को आराम का कर्म भी कहते हैं। प्रयासपूर्ण कर्म, मेहनत के कर्म भी कहे जाते हैं।

ध्यान का कर्म तो मात्र आराम कर्म है।

समाज, इस सत्य के प्रति जागरूक नहीं है कि मात्र आराम कर्म के माध्यम से वह, अपने इन्द्रिय जगत की क्रियाओं में 'दिव्य शक्तियों' का योग प्राप्त कर सकता है। 'आराम कर्म' द्वारा मन में ब्रह्मतत्व पिरोते हैं और; ब्रह्मतत्व

पिरोने से मन, उच्च स्तर की जागृति को प्राप्त होता है। मनुष्य जितने उच्च स्तर की जागृति में आराम होने देता है-वह उतने ही गहरे आराम को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् हम जिस चेतना में जितना गहराआराम प्राप्त कर लेते हैं, तुलनात्मक दृष्टि से उससे भी ऊँची चेतना को प्राप्त हो जाते हैं।

सारांश यह है कि 'उच्च चेतना की प्राप्ति', जागृत अवस्था में गहरे-से-गहरे आराम को प्राप्त करके, की जा सकती है।

समाज का साधारण मनुष्य तो मात्र सबसे निम्न चेतना-

अर्थात् निद्रा की चेतना में आराम से परिचित है।

जागृत अवस्था में गहरा आराम ही गहरा ध्यान है।

इस सत्य से परिचित न होने के कारण, समाज के अधिकतर लोग प्रयासपूर्ण कर्मों द्वारा 'ईश्वर का ध्यान' करने का प्रयत्न करते हैं और जीवन में असफल रहते हैं। जीवन के अधिकतर समय में प्रयासपूर्ण कर्मों में रहने के कारण, वे केवल इन्द्रिय जगत के अलग अलग विषयों के 'प्रयासपूर्ण ध्यान' से परिचित हैं और इसीलिए वे ईश्वर को भी प्रयासपूर्ण ध्यान से पाने का प्रयत्न करते हैं।

कर्म क्षेत्र बदल जाने से भी कर्म के गुण बदल जाते हैं।

इन गुणों के आधार पर भी कर्मों का विभाजन संभव है। प्रयासपूर्ण कर्म को 'करनी' भी कहते हैं। 'करनी', मात्र इन्द्रिय जगत का कर्म है। इन्द्रिय, बुद्धि और 'मैं' से परे जगत, 'होनी का जगत' है। इस जगत में करनी संभव ही नहीं है।

इस तरह से दो क्षेत्र के आधार पर भी कर्म, दो प्रकार के होते हैं; करनी और होनी। इन्द्रिय जगत में करनी और होनी, दोनों तरह की शक्तियों की अनुभूति होती है। परन्तु निद्रा के समय या स्वप्न के समय-जब मन मात्र आन्तरिक जगत में विचरण करता है-तो 'करनी' की संभावना ही नहीं रहती।

हर शक्तिशाली, किसी भी शक्तिहीन के क्षेत्र में प्रवेश ले लेता है- यद्यपि कोई भी शक्तिहीन, किसी भी शक्तिशाली के क्षेत्र में बिना अनुमति लिए-प्रवेश करने का साहस नहीं करता। इसी सिद्धान्त के आधार पर यह अनुभव कि 'करनी के क्षेत्र' में तो 'होनी' के उदाहरण मिलते हैं-लेकिन 'होनी के क्षेत्र में 'करनी'

संभव नहीं-हमें स्पष्ट रूप से बताता है कि 'होनी'; करनी से बहुत अधिक बलवान है। यही, इस बात का प्रमाण है कि पराजगत, 'शक्तियों के स्रोत का जगत' है। यदि मनुष्य अपने जीवन में इन 'दिव्य शक्तियों' का लाभ प्राप्त करना चाहता है-तो उसे 'परा कर्म' या 'गहरे-से-गहरे आराम के कर्म' या 'होनी के क्षेत्र के कर्मों' में रहने का अभ्यास करके, सिद्धि प्राप्त करनी होगी।

सृष्टि में अनन्त तरह के सागर अनुभव में आते हैं। उदाहरण के लिए, इन्द्रिय जगत में-वायु, ठंडक, गर्मी, जल, प्रकाश आदि के सागर अनुभव में आते हैं। इसी तरह से एक साधारण मनुष्य भी यह अनुभव कर सकता है कि

पराजगत में एक 'भाव का सागर' है

और यह 'भावों का सागर', ही 'मन की जन्मभूमि' है।

इसी सागर के किसी सूक्ष्म या स्थूल पर्त में अलग अलग व्यक्तियों के 'मन का निवास' है। इस सागर में विचरण करके 'मन', धीरे धीरे तुलनात्मक दृष्टि से ज्यादा-से-ज्यादा सूक्ष्म पर्त में अपना स्थायी निवास बनाता है। जो इस लक्ष्य में सफल नहीं होता-वह इस सागर के स्थूल पर्तों में रहता है। सागर; जल का हो-या हवा का- या ठंडक का-या गर्मी का-या प्रकाश का; सागर के तत्व की लहरें, सागर में अवश्य होंगी।

सागर के स्थूल पर्त की लहरें, हमेशा ही अशान्त होती हैं

और सूक्ष्म पर्त की लहरें, हमेशा शान्त होती हैं।

जिसका मन, ध्यान के कर्म के अभ्यास द्वारा-भावों के जितने सूक्ष्म, अर्थात् शान्त लहरों वाले पर्त में अपना निवास प्राप्त करने में सफल हो जाता है-स्वयं वह मन अपने 'निवास स्थान' के आधार पर, धीरे धीरे स्थायी रूप से शान्त होने लगता है। ऐसा शान्त मन, जब बुद्धि और इन्द्रियों की मदद से, 'मैं' के क्षेत्र में विचरण करता है-तब भी शान्ति में स्थित होकर विचरण करने योग्य हो जाता है और शरीर में विद्यमान, ऐसे मन को समाज 'महान आत्माओं' के नाम से पुकारता है।

भावों के सागर में ही शान्ति का सागर भी स्थित है।

भावों के सूक्ष्मतम पर्त में 'परम शान्ति' का निवास है।

इस शान्ति का सम्बन्ध, मन की चेतना से है।

जितनी ही उच्च कोटि की चेतना होगी-उतना ही शान्त मन होगा।

'ध्यान कर्म' की परिभाषा तो मात्र 'इन्द्रिय से परे जगत' मे, मन का विचरण है। यह विचरण, मन की अलग अलग शान्त अवस्थाओं में-या यह कहें कि चेतनाओं की अलग अलग अवस्थाओं में होता है। जो जितनी ही उच्च चेतना को प्राप्त करके विचारों के सागर में विचरण करता है, वह विचारों के उतने ही सूक्ष्म पर्तों में स्थायी रूप से रहने योग्य होने लगता है। चेतना की इसी अवस्था के आधार पर अलग अलग व्यक्तियों का मन, शान्त और अशान्त रहता है। पुराणों का इतिहास हमें बताता है कि; एक समय था-जब समाज में चेतना के विकास की शिक्षा, इतनी ही प्रचलित थी-जितनी आज के समाज में बाहर के 'धन को अर्जित' करने की शिक्षा प्रचलित है। निद्रा; एक जीवित व्यक्ति की सबसे निम्न चेतना है और सभी का मन, इस चेतना में मात्र 'पराजगत' में ही विचरण करता है। मन, 'पराजगत में विचरण' करे-उस मन की चेतना का विकास निश्चित है। इसीलिए हम देखते हैं कि निद्रा में रहते रहते मनुष्य, अपने आप स्वप्न की अवस्था में आ जाता है-क्योंकि स्वप्न की चेतना, निद्रा की चेतना से उच्च कोटि की चेतना है। स्वप्न देखते देखते हमारी दसों इन्द्रियां जागृत हो जाती हैं-क्योंकि जागृति, अन्दर से ही होती है।

इसलिए हम कहते हैं कि 'ध्यान कर्म' से आंतरिक जगत के समस्त 'देवी देवताओं' को जागृत किया जा सकता है।

इन्द्रियों के जागरण के पश्चात्, जीवन में दो संभावनाएं बन जाती हैं-अपनी स्वतन्त्र इच्छा का लाभ उठाते हुए हम जागने का क्रम बनाएं रखें; या इन्द्रिय जगत के कर्मों में व्यस्त रहकर अपनी चेतना के विकास को रोक दें। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-29 : कर्म उपासना ज्ञान हैं, जीने की विधि तीन।
निज स्तर पर हैं सभी, यज्ञ, दान, तप लीन॥

कर्म, उपासना और ज्ञान-जीने की तीन विधियां हैं। यज्ञ, दान और तप-अपने स्तर पर लाभदायक हैं। मनुष्य अपना जीवन कर्मकाण्ड की साधना, या उपासनाकाण्ड की साधना अथवा ज्ञानकाण्ड की साधना से व्यतीत करता है। कर्मकाण्ड की साधना 'मैं' द्वारा और बुद्धि के अनुशासन में की जाती है।

उपासनाकाण्ड की साधना, 'ध्यान' के नियमित अभ्यास और उसके बाद स्वाभाविक क्रिया करने की रूझान के साथ की जाती है।

लेकिन ज्ञानकाण्ड की साधना में 'मैं', कोई साधना नहीं करता। इसमें साधक की साधना का प्रेरक 'ब्रह्म की शक्ति' होती है-जो उसे यह अनुभव करा देती है कि; ब्रह्म क्या है और वह उसके जीवन को संवारने के लिये किस प्रकार सक्रिय हो गया है?

जिससे उसके जीवन के सभी व्यापार-स्वाभाविक रूप से, बिना बुद्धि के अनुशासन के मंगलमय रीति से सम्पन्न हो रहे हैं।

कुछ महात्मा गीता (18.3) द्वारा 'यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे' को उधृत कर, जोर देकर कहते हैं कि; यज्ञ, दान और तप त्यागने योग्य नहीं हैं। इन्हें अवश्य करना चाहिये। परन्तु वे गीता (18.6) के तात्पर्य को ध्यान में नहीं रखते। उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि

सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति और फलाशा को त्याग कर करने चाहियें।

उन्हें ईमानदारी से इस बात को देखना चाहिये कि जब वे कहते है कि; यज्ञ, दान और तप अवश्य करना चाहिये-तब उनके मन में उनसे 'होने वाले लाभ' और; न करने से 'होने वाली हानि' की बात रहती है-अथवा नहीं।

शरीर और बुद्धि के स्तर से किये जाने वाले यज्ञ, दान और तप निश्चय ही निम्न स्तर के हैं तथा दुःख नाश करने में असमर्थ हैं। इस बात को गीता (11.53) में स्पष्ट किया गया है-

'हे अर्जुन, न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से; मैं देखा जाने में शक्य हूं।'

स्वामी रामसुखदास जी कहते हैं कि 'कितनी ही महान क्रिया क्यों न हो, कितनी ही योग्यता से सम्पन्न क्यों न की जाय-उसके द्वारा भगवान खरीदे नहीं जा सकते।

वे सबके सब मिलकर भी भगवद्प्राप्ति का मूल्य नहीं हो सकते।

अनेक वेदों का अध्ययन करने पर, बहुत बड़ी तपस्या करने पर, बहुत बड़ा दान देने पर तथा बहुत बड़े यज्ञ अनुष्ठान करने पर; भगवान मिल जायेंगे-ऐसी बात नहीं है।

उपासना संबंधी कर्म ही, हमारी चेतना का विकास करते हैं।

चेतना के विकास में ही; ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इसलिये सत्य यही है कि; उपासना संबंधी कर्म ही हमें जीवन का ज्ञान देते हैं। और ज्ञान के बिना, बन्धनों से मुक्ति-अर्थात् दुखों से छुटकारा संभव नहीं है, यह सभी जानते हैं-

'ऋतेज्ञाना: न मुक्तिः'।

जहां पर भी यज्ञ, दान, तप को अनिवार्य कहा गया है-वहां गीता (18.6) का तथा सिद्ध सन्तों का तात्पर्य आसक्ति ओर फल का त्याग कर के ही-यज्ञ, दान तप करने की बात कही गई है।

ये आसक्ति और फल त्यागपूर्ण कर्म,

केवल उपासना और ज्ञानकाण्ड की साधनाओं में ही संभव हैं।

इन साधनाओं में ये तीनों स्वतः अर्थात् स्वभावतः होते हैं।

गीता (8.28) में इसे और भी स्पष्ट कहा गया है-

'योगी पुरुष (ध्यान की साधना का उच्च साधक), वेदों के पढ़ने से, यज्ञ, तप तथा दानादिकों के करने से-जो पुण्यफल प्राप्त होता है, ध्यान की साधना से उन सभी का अतिक्रमण हो जाता है और वह सनातन; परमपद को प्राप्त करता है।'

दोहा-30 : होती मन या बुद्धि के, क्रिया सदा अनुकूल।
बुद्धिजनित सब खण्ड है, मन अखण्ड सुखमूल॥

कोई भी क्रिया, बुद्धि या मन के अनुसार की जाती है। बुद्धि के काम, कुछ

फल देते हैं - परन्तु मन की ब्रह्म की शक्ति के द्वारा सब काम पूर्ण और सुखदाई होते हैं।

मनुष्य की सारी क्रियाओं पर-या तो बुद्धि का नियंत्रण होता है अथवा; वे क्रियाएं मन के अनुकूल होती हैं। बुद्धि उचित-अनुचित, लाभ-हानि इत्यादि का विवेचन कर के क्रियाओं को नियंत्रित करती है और; मन अपने में वर्तमान 'ब्रह्म की शक्ति' के अनुरूप-अपनी रूचि के अनुसार, स्वाभाविक क्रिया करता है।

मन की शक्ति, अखण्ड की शक्ति ही होती है।

यह ध्यान के अभ्यास, न होने से कम होती जाती है और उसी अनुपात में बुद्धि सबल होकर क्रियाओं को नियंत्रित करने लगती है तथा यह बुद्धि सर्वाधिक कष्टदायक और दुखद तनाव को जन्म देती और बढ़ाती रहती है।

ध्यान के नियमित अभ्यास (Meditation) से मन, जीवात्मा की शक्ति से शक्तिशाली होता जाता है और, क्रियाओं को अपनी रूचि के अनुसार गति देता रहता है। इसमें श्रम नहीं होता। तनाव के होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह जीवन को हर तरह से सुख और शान्ति की ओर ले जाता है।

बुद्धि की शक्ति, खण्ड की सीमाओं को पार करने में असमर्थ है।

साथ ही खण्ड के अनन्त पहलुओं में सबको एक साथ छू भी नहीं सकती।

दोहा-31 : शिक्षा तन की बुद्धि की, देता है संसार।
मन को शिक्षित ध्यान से, करें तो बेड़ा पार॥

संसार हमें शरीर और बुद्धि की शिक्षा देता है।

पर जब मन को ध्यान द्वारा शिक्षित करेंगे; बेड़ा पार-तभी होगा।

समाज से धीरे-धीरे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा गायब हो गई। मनुष्य अब मात्र शरीर और बुद्धि के विकास में संलग्न रह कर-उनकी शक्तियों के माध्यम से, जीवन संवारने के प्रयास में संलग्न है। फलतः जीवन में दुःख बढ़ने लगा। लेकिन इधर फिर कुछ वर्षों से ध्यान के माध्यम से मन को शिक्षित करने-अर्थात् 'ब्रह्म तत्व की शक्ति' प्राप्त करने की शिक्षा उभर रही है। अगर इस शिक्षा का प्रसार (जैसा कि

दिखाई देता है); होता गया-तो मनुष्यों के जीवन के प्रत्येक पहलू विकसित और सुखी होते जायेंगे। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जंपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 4 से 5 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक (Practical) और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 4 बजे से सायं 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER